लम्बी समाख्यानक कविता एवं मुक्त छंद के प्रथम प्रयोक्ता कवि बाबू महेश नारायण

डॉ० प्रभात रंजन

सहायक प्राध्यापक

हिन्दी, संत, गुरु घासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कुरुद्ध

जिला धमतरी (छ.ग.)

सारांश

खड़ी बोली हिन्दी कविता के प्रारंभिक उत्थान में जिन कवियों का अमूल्य योगदान रहा है उनमें बाबू महेश नारायण अग्रगण्य हैं। बाबू महेश नारायण लम्बी समानाख्यानक कविता तथा मुक्त छंद के प्रथम प्रयोक्ता कवि है। मुक्तिबोध की कविता में जो स्वप्न बिम्ब दीखता है उसका पूर्वाभास श्री महेश नारायण की कविता में मिलता है। उनकी महत्वूपर्ण कविता 'स्वप्न' उपरोक्त तीनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। प्रेम, यातना, वैधव्य, पुनर्प्रेम देश–निकाला पराधीनता और स्वाधीनता के बीच के द्वन्द्व को रेखांकित करती सामाजिकता और राष्ट्रीयता के द्वन्द्व को भी दर्शाती है। आज भी अधिकांश हिन्दी के विद्वान आलोचक और इतिहासकार इनके महत्व से अनजान दीखते हैं। यह शोध पत्र बाबू महेश नारायण और उनकी ऐतिहासिक कविता 'स्वप्न' के महत्व को रेखांकित करती है।

मूल शब्द

महेश नारायण, मुक्त छंद, खड़ी बोली आंदोलन, स्वप्न।

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

डॉ० प्रभात रंजन

लम्बी समाख्यानक कविता एवं मुक्त छंद के प्रथम प्रयोक्ता कवि बाबू महेश नारायण

शोध मंथन, मार्च 2018,
पेज सं0 28–34

Article No. 5
http://anubooks.com
?page_id=581

प्रस्तावना

हिन्दी में मुक्त छंद के प्रथम प्रयोक्ता तथा लम्बी समाख्यानक कविता के कवि के रूप में प्रायः हम छायावादी कवियों को ही जानते हैं परन्तु बाबू महेश नारायण ने छायावादी युग से प्रायः 40 वर्ष पहले 1881 में 'स्वप्न' नाम से एक कविता लिखी थी जो पटना से प्रकाशित 'विहार–बंधु' में छपी थी। यह कविता उपरोक्त दोनों विशेषताओं को अपने भीतर समेटे हुए है। इतना ही नहीं स्वप्न बिम्ब की जिस शैली का प्रयोग मुक्तिबोध ने अपनी लम्बी कविताओं के शिल्प में किया है उसका भी पूर्वाभास यह कविता देती है।

1858 ई. में विहार प्रदेश के पटना में जन्मे बाबू महेश नारायण फारसी हिन्दी तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं का ज्ञान रखते थे। उन्होनें हिन्दी ही नहीं अपितु अंग्रेजी में भी अनेक निबंधों और कविताओं का लेखन किया। वे एक कुशल संपादक भी थे। उन्होनें 'बिहार टाईम्स' तथा 'कायस्थ गजेट' नामक पत्रों का भी संपादन किया। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना तथा सामाजिक चेतना दोनों के स्वर दीख पड़ते हैं। इनकी रचनाएँ आम आदमी से जुड़ी हुई हैं तथा जन सामान्य की समस्याओं को गंभीरता से उन्होंने अपनी कविताओं में उठाया है।

महेश नारायण की सबसे चर्चित लम्बी और सशक्त कविता है 'स्वप्न'। कविता मुक्त छंद की है तथा यह कविता खड़ी बोली में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' रचित 'जूही की कली' से लगभग छत्तीस वर्ष पूर्व लिखी गई थी। परंतु हिन्दी के कतिपय इतिहास लेखकों तथा विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ। इसका सबसे बड़ा कारण उपेक्षा ही नहीं अपितु ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली का विवाद था''[1] भारतेन्दु मंडल के लेखकों का मानना था कि खड़ी बोली में अच्छी कविता लिखी ही नहीं जा सकती। भारतेन्दु लिखते है कि ''मैने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरे चित्तानुसार न बनी।''[2]यह दौर खड़ी बोली को काव्य भाषा में स्वीकार तथा अस्वीकार करने के उहापोह का दौर था। दैनिक हिन्दोस्थान, सार सुधानिधि, पीयूष प्रवाह तथा चंपारण चंद्रिका में ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली का शाब्दिक द्वन्द्व युद्ध देखने को मिलता है। दैनिक हिन्दोस्थान में 'भारतेन्दु मंडल के ब्रजभाषा समर्थक तथा खड़ी बोली समर्थकों के मध्य का यह संवाद वर्षों तक चला।'' [3] भारतेन्दु मंडल के लेखकों का यह मानना था कि गद्य की भाषा खड़ी बोली हो तथा पद्य की भाषा ब्रजभाषा। श्री राधाचरण गोस्वामी ने उस समय जोर देकर खड़ी बोली का विरोध किया तथा दैनिक हिन्दोस्थान के संपादक ने खड़ी बोली में कविता हो सकती है इसका पुरजोर समर्थन किया''खड़ी बोली में कविता हो सकती है, यह सर्वांश सत्य है कि संसार की सब भाषाओं में कविता हुई तो खड़ी बोली में क्यों नहीं हो सकती।''[4]

इस विवाद के कुछ समय पूर्व हीखड़ी बोली में बाबू महेश नारायण ने अपनी कविता 'स्वप्न' लिखी थी। इस विवाद के कारण संभवतः इस कविता पर विचार नहीं हो पाया अथवा जानबूझकर हिन्दी के इतिहासकारों अथवा कर्णधारों ने इन्हें भुला दिया। खड़ी बोली की इस लम्बी कविता के स्वरूप के संबंध में अयोध्या प्रसाद खत्री को पत्र लिखकर जार्ज गिर्यसन ने लिखा ''खड़ी बोली के लिए जो भी प्रयास किया जायेगा वह असफल होगा। इस संबंध में बनारस के बाबू हरिशचंद ने विचार किया है मैं समझता हूँ कि उनका मत उचित है, इतना ही नहीं खड़ी बोली की काव्य रचना को दबाने के लिए प्रताप नारायण मिश्र ने अपने पत्र 'ब्राम्हण' के संपादकीय में स्पष्ट लिखा है कि आधुनिक कवियों के शिरोमणि भारतेन्दु जी से यह कार्य न हो सका तो यत्न निष्फल है।''[5]

कहना न होगा कि आगे के इतिहासकारों और भाषाविदों ने इसी को आधार मानकर 'स्वप्न' की महत्ता को खारिज कर दिया।

उपरोक्त के आलोक में 'स्वप्न' कविता पर विचार करना यहाँ समीचीन होगा जो खड़ी बोली कविता के विकास में मील के पत्थर के रूप में है। कविता मुक्त छंद की है। कुछ विद्वान इसे वर्डसवर्थ के 'ओड ऑफ इमार्टीलिटी' के आधार पर बनी हुई कविता कहते है। परन्तु संस्कष्त के अतुकांत छंदो को देखने के बाद यह बात समीचीन प्रतीत नहीं होती। कविता लंबी है, करीब 25 पष्ष्ठों की। यह कविता धारावाहिक रूप से 'विहार–बंधु' में छपी थी। 32 भागों में बंटे इस कविता का प्रारंभ इस प्रकार होता है –

थी अंधेरी रात और सुनसान था
और फैला दूरतक मैदान था,
जंगल भी वहीं था
जानवर का गुमां था
बादल था गरजता
बिजली थी चमकती
वो बिजली की चमक से रोशनी होती भयंकर सी।
दरख्तों पे जो बिजली को चमक पड़ती
अंधेरे में डालों के तले
पत्तोंसे भी होकर

तो यह मालूम होता जैसे हो वह सख्त घेर में।''[7]

कविता की कथावस्तु कल्पना के रंग में रंगकर आगे बढ़ती है चन्द्रलोक की एक षोडशी एक युवक से प्रेम करने के कारण शून्य में फेंक दी जाती है और वह पृथ्वी पर घनघोर नीरव जंगल में आ गिरती है। वह रो–रोकर अपने ऊपर हुए अत्याचार की कथा कहती है और कथा कहते–कहते मूर्छित हो जाती है। जबवह होश में आती है, तो उसे अपनी जन्मभूमि की याद आती है वह करूण स्वर मे अपने प्रेमी को पुकार उठती है–

अरे नयनों के सितारे
मेरे प्यारे
आरे प्यारे।

कन्या की आपबीती का अक्षुण्ण प्रभाव पाठकों पर पड़ता है। कविता स्वप्न में चलती है तथा पाठकों को कविता के अंत में इसका पता चलता है। स्वप्न की घटना पाठकों के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती है। अपनी बेटी को एक युवक से प्रेम में देखकर उसका पिता एक वष्द्ध जिसके पांव कब्र में लटके है, से उनकी शादी कर देता है ससुराल जाने पर वह अपनी बेबसी पर रोती है। बूढ़ा पति हँसते हुए कहता है कि मेरे मरने के बाद मेरी सारी संपत्ति तुम्हारी और तुम्हारे माँ की हो जायेगी। बूढ़ा मर जाता है तथा वह वैधव्य धारण करते हुए भी कुंआरी रह जाती है। अपनी व्यथा वह इस तरह व्यक्त करती

है।

चन्द्रलोक है देश मेरा
वो एक अमीर देश की कन्या हूँ मैं
कुमारी नहीं कुमारी, हाँ कुमारी ही हूँ मैं
सांस एक लेके
समझो मुझे जो सूझ पड़े, पर मैं एक विधवा हूँ कुमारी।

कथा नाटकीय शैली में है तथा एकालाप शैली में चलती है। वह अपनी व्यथा तो कहती ही है, अपनी स्वाधीनता भी चाहती है तथा देश की स्वतंत्रता का संकेत भी देती है। राष्ट्र का दुख और उसका अपना दुख दोनों एकाकार हो उठते है।

क्या है यह अहा हिन्दी की जमीन
होगी तो जरूर यह स्वाधीन
चन्द्रलोक से आाई हूँ
जहाँ धीनता की है बड़ी बड़ाई
राजा तो यहाँ यहीं के होंगे
वाँ तो विदेशी राज करते
सब कार्य विदेशी ही करते है वाँ
वो विदेशियों की है बड़ी प्रघराई

कथा दोनों स्तर पर चलती है,ढांचा बेतरतीब है और दष्श्य स्वप्न में चलता है सपने क्रमबद्ध नही हो सकते अतः कथा भी कथात्मक रूप में न चलकर अज्ञेय कें शेखर एक जीवनी की तरह बेतरतीब है। एक तरफ युवती की विपद्गााथा है जिसे हम सामाजिक कथा तथा दूसरी ओर पराधीनता से मुक्ति का स्वर है जिसे हम राष्ट्रीय कह सकते है। चंद्रलोक की कन्या पष्थ्वी पर आते ही स्वाधीनता का कामना करने लगती है। सामाजिक कथ्य और राष्ट्रीय कथ्य को एकाकार का प्रस्तुत करने का महेश नारायण जी का यह प्रयास काव्य–कला की कसौटी पर कमजोर तो लगता है पर सामाजिकता और राष्ट्रीयता के तात्कालीन परिस्थितियों को पूर्ण रूप से प्रतिपादित करने में यह कविता समर्थ है। यह कवि के प्रखर युगबोध का प्रमाण है। पराधीनता बोध के साथ स्वाधीनता की आकांक्षा इन पक्तियों में दृश्टव्य है –

प्यार मेरा हुआ जिस घड़ी मुझ से जुदा,
समझा कि कुंआरी हुई मै विधवा।
हम लोग हमेशा चुप ही रहते है वहाँ
और आज जो पूछा, रूपये सब जाते कहाँ
तो कहते है कसमें खा–खा के
हैं करते हम इससे तुम्हारी भलाई

अपनी पराधीनता तथा सत्ता के प्रति महेश नारायण का यह विद्रोही स्वर है। स्वाधीन होने की कामना

स्वप्न में किस प्रकार बलबती है –

फूलों से बसा हुआ था वह कुंज
था प्रीत मिलन के योग्य वह कुंज।
रहते थे अमन से उस चमन में,
आदम को मिले न जो अमन–अदन में।
आती थी उस जगह से,
स्वाधीनता की खुशबू ,
स्वाधीन थे दरख्त,
स्वाधीन थी लतें,
स्वाधीन सुर थे चिडियों के।

कविता में वह षोडशी अपनी तमाम माननीय दुर्बलताओं के साथ उपस्थित है। वह प्रेम, यातना, अवांछित विवाह, वैधव्य पुर्नप्रेम, देश–निकाला, पराधीनता तथा स्वाधीनता आदि सभी स्थितियों में सक्रिय और गतिशील है। वह सिर्फ यातना ही नहीं सहती बल्कि विपरीत परिस्थितियों में भी नारी और राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत रहती हैं।

कविता चूंकि 'स्वप्न' में चलती है अतः वातावरण की सृष्टि में जितने उपादान हो सकते है, यथा जंगल, वर्षा, आंधी, निर्झर, अंधेरी रात और सुनसान वातावरण आदि के वर्णन में कवि का मन खूब रमा है–

एकझरना भी बहुत शफ्फाक था
बर्फ के मानिन्द पानी साफ था,
आरंभ कहॉ था कैसा था
वह मालूम नही हो
पर उसकी बहार
हीरे की हो धारा
मोती का गर हो खेत
कुंदन की हो वर्षा।

इन पंक्तियों को छायावादी कवियों के प्रकृति प्रेम और प्रकषति वर्णन की पूर्व पीठिका के रूप में भी देखा जा सकता है। नायिका की देहयष्टि के संश्लिष्ट वर्णन में भी इसकी झलक देखी जा सकती है–

मुखचंद पे मेह थे छाये हुए
पर ज्योति नहीं उसकी छिपती
जस भेष मलीन में बुद्धि तीक्ष्ण
नहीं छिपती पै नहीं छिपती
जस लाख बरस की गुलामी से
स्वाधीन जमीन नहीं छिपती

उस शोग के में से सुंदरता
उस कामिनी की थी नहीं छिपती।

महेश नारायण के मुक्त छंद की इस कविता में कहीं–कहीं ब्रजभाषा का पुट भी दीखता है। मुक्त छंद की सुंदर छटा इसमें दीखती है। हिन्दी नवजागरण की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि समाज में व्याप्त रूढ़ियों के विरोध के साथ–साथ समाज की पुर्नरचना तथा राष्ट्रीय चेतना भी इसमें साथ–साथ चलते है। यह स्वप्न कविता में पूर्णतया दिखलाई पड़ता है। उपरोक्त कविता का विश्लेषण यहॉ इस लिए भी अपेक्षित था कि हम इस महत्वपूर्ण कविता को हिन्दी के सुधी विद्वानों तथा पाठकों तक भी पहुंचाए।

हिन्दी में मुक्त छंद के प्रथम कवि के रूप में हम निराला को जानते है और 'जूही की कली' से इसकी शुरूवात भी मानते है। निराला लिखते हैं कि ''मनुष्यों' की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्म के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है जिस मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरों के प्रतिकूल आचरण नहीं करता उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते है फिर भी स्वतंत्र। इसी तरह कविता का भी हाल है।''[8]

महेश नारायण ने अपनी कविता 'स्वप्न' के माध्यम से 1886 में ही छंद मुक्ति के द्वार खोल चुके थे। कविता स्वयं यह संदेश देती है कि नारी स्वतंत्रता तथा देश की स्वतंत्रता के साथ–साथ छंदो को भी स्वतंत्र होना चाहिए। यह कविता वह ठोस आधार प्रदान करती है जिसके आधार पर निराला आदि कवियों ने अपनी रचनाएँ की। लंबी कविता का दौर भी प्रयोगवादी और छायावादी दौर में दीखता है, इसका आधार भी 'स्वप्न' ही है। स्वप्न बिम्ब की जिस शैली का प्रयोग मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में मिलता है उसके शिल्प का पूर्वाभास भी महेश नारायण की इस कविता में है।

उपरोक्त के आलोक में यह कहा जा सकता है कि आगे की खड़ी बोली कविता 'स्वप्न' में अपना आधार तलाशती है। बाबू महेश नारायण का यह प्रयत्न तात्कालीन समय में बहुत ही साहसिक तथा क्रांतिकारी है। बाबू महेश नारायण इस कविता के माध्यम से नये युग का द्वार खोलते हैं। भाव भाषा तथा शिल्प तीनों दृष्टियों से महेश नारायण जी की यह कविता खड़ी बोली कविता का काव्याधार है। आशा है कि इस विवेचन के आलोक में हिन्दी के विद्वान महेश नारायण के इस महती कार्य को स्वीकृति प्रदान करेंगे।

संदर्भ

1. संपादक भुवनेश्वर मिश्र– *खड़ी बोली का आंदोलन*– **पृष्ठ 1**
2. विहार बंधु– 24 जून **1886**
3. दैनिक हिन्दोस्थान– 11 नवम्बर **1887** से दिसम्बर **1888** तक
4. डॉ शितिकंठ मिश्र– *खड़ी बोली का आदोलन* **पृष्ठ–178**
5. गया से बाबू अयोध्या प्रसाद के लिखा जार्ज गिर्यसन का पत्र दिनांक 06 सितम्बर **1887**, खड़ी बोली

को आंदोलन–संपादक पं भुवनेश्वर मिश्र, प्रकाशन सन अज्ञात,

6. विहार बंधु– दिनांक 13 अक्टूबर **1881** से 15 दिसम्बर **1881** तक
7. नलिन बिलोचन शर्मा–खत्री स्मारक ग्रंथ– **पृष्ठ–135**
8. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला परिमल की भूमिका–– **पृष्ठ 02**